अध्याय-द्वितीय

अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति- ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

अध्याय - द्वितीय
अनुसूचित जाति, अनुसूचित जनजाति- ऐतिहासिक पृष्ठभूमि

2.1 परिचय

ऐसा माना जाता है कि दुनिया में किसी भी समाज, व्यवस्था और धर्म का निर्माण किसी भी ईश्वर, अल्लाह या गॉड ने नहीं किया है बल्कि यह व्यवस्था स्वयं मानव के द्वारा निर्मित की गई है। अतः स्पष्ट है कि न केवल जाति व्यवस्था वरन् दुनिया की सभी व्यवस्थाओं को मनुष्य ने बनाया है ना कि ईश्वर ने। भारत में जाति की उत्पत्ति आर्यों के आगमन के बाद हुई. प्रत्येक कार्य और व्यवस्था के पीछे एक कारण और सम्बन्ध होता है. ऐसा ही सम्बन्ध जाति और उसकी व्यवस्था के पीछे भी है।

जाति व्यवस्था भारतीय सामाजिक संरचना की एक अनुपम एवं बहुत चर्चित विषेषता है जो कि हिन्दु धर्म द्वारा पूर्णतः अनुमोदित है और भारत में जाति सार्वभौम है। यह व्यवहार में अत्यधिक हिन्दु है परन्तु यह केवल मात्र ऐसी ही नही है। यह व्यवस्था मैगस्थनीज के समय से लेकर आज तक किसी भी विदेशी का ध्यान आकर्षित करने से नही चूक सकी है। आर्यों के पूर्व काल में भारतीय समाज में वर्ण व्यवस्था का प्रचलन था। ब्राहम्ण, क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र वर्ण ही आयों के आने के पश्चात अनेक जातियों में परिवर्तित हो गये। आज भारत वर्ष में लगभग तीन हजार जातियां व उपजातियां है। जाति व्यवस्था यद्यपि भारतीय समाज की एक अनुपम विशेषता है। जाति व्यवस्था, एक ओर, हिन्दू सामाजिक संरचना के प्रकार को प्रकट करती है, तो दूसरी ओर हिन्दुओं के आचरण को भी निश्चित करती है।

ऐसा कहा जाता है कि भारत की वायु में "जाति" है, जो भी यहां श्वास लेता है, जाति के तत्व उसमें प्रवेश कर जाते है। भारतीय राजनीतिक इतिहास में जिन जातियों को वर्तमान समय में अनुसूचित जातियों के नाम से जाना जाता है, उन्हें प्राचीन काल से वर्तमान तक विभिन्न नामों से जाना गया है, जैसे- दास, दस्यु, अनार्य, शूद्र, अतिशूद्र, अछूत, अस्पृश्य एवं तिरस्कृत वर्ग, अन्त्यज, पंचम एवं छितरे हुए वर्ग, हरिजन, दलित, अवर्ण और परिगणित जातियों अथवा अनुसूचित जातियां (शेडूल्ड कास्ट)। इस प्रकार

विश्व राजनीति के इतिहास में शायद ही किसी एक वर्ग, जाति और समुदाय के नाम में इतने परिवर्तन हुए हों, जितने अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जन जातियों के नाम के हुए है।[1]

20वीं शताब्दी के द्वितीय दशक में पहली बार महात्मा गांधी और डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अलग-अलग दिशाओं में दलितों की समस्याओं के समाधान के लिए यथार्थवादी एवं वैज्ञानिक दृष्टिकोण से न केवल अध्ययन किया बल्कि दोनों ने इन जातियों के उत्थान के लिए आन्दोलन भी चलाए। सवर्ण सुधारकों में गांधी जी (1869-1948) ही ऐसे प्रथम व्यक्ति हुए जिन्होंने अस्पृश्यता की भावना को सवर्णों के हृदय में पाया। यही कारण था कि ये इस समस्या के लिए सवर्ण हिन्दुओं को दोष देते थे और इसके निवारण के लिए सवर्ण हिन्दुओं के दृष्टिकोण में परिवर्तन लाना चाहते थे। इसी वजह से गांधी जी इस समस्या का समाधान हिन्दू धर्म व जाति के ढाँचे में करने के पक्ष में थे। क्योंकि वे यह मानते थे कि जिस प्रकार दलितों के लिए भौतिक उत्थान आवश्यक है, उसी प्रकार सवर्ण एवं सम्पन्न वर्ग के लिए आध्यात्मिक उत्थान आवश्यक है। इसीलिये गांधी जी अनुसूचित जातियों एवं अनुसूचित जन जातियों (दलितों) का उत्थान सर्वप्रथम धार्मिक और नैतिक दृष्टिकोण से करना चाहते थे, जिससे सवर्ण-अवर्ण के भेदभाव को समाप्त किया जा सकें।[2]

2.2 भारत में वर्ण व्यवस्था एवं जाति की उत्पत्ति

धर्म शास्त्रों में आर्यों का सबसे पहला वेद 'ऋग्वेद' है, जिसके 'पुरुष सूक्त' में वर्ण व्यवस्था का उल्लेख है। इसमें समाज व्यवस्था को चार वर्णों - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में बांटा गया है। पुरुष सूक्त में वर्णों की उत्पत्ति ब्रह्मा नाम के शरीर से हुई बताई गई। इसमें कहा गया कि ब्रह्मा के मुख से ब्राह्मणों की, भुजाओं से क्षत्रियों की, पेट से वैश्यों की तथा पैर से शूद्रों की उत्पत्ति हुई है। इस व्यवस्था में सबके काम बांटे गए। आर्यों

---

1 रविन्द्र नाथ मुखर्जी, भारतीय समाज व संस्कृति (दिल्ली: विवेक प्रकाशन, 1999), पृष्ठ संख्या 41

2 रामजी सिंह, गांधी विचार दर्शन, धर्म, राजनीति और अर्थनीति (दिल्ली मानक पब्लिकेशन, 1995) पृष्ठ संख्या 23

ने अपने लिए वो काम निर्धारित किए, जिनसे वो समाज में प्रत्येक स्तर पर सबसे ऊंचाई पर बने रहें और उन्हें कोई काम न करना पड़े। आर्यों ने इस व्यवस्था के पक्ष में यह तर्क दिया कि चूंकि ब्राह्मण का जन्म ब्रह्मा के मुख से हुआ है इसलिए ब्राह्मण का काम ज्ञान हासिल करना और उपदेश देना है। उपदेश से उनका मतलब सबको सिर्फ आदेश देने से था, क्षत्रिय का काम रक्षा करना, वैश्य का काम व्यवसाय करना तथा शूद्रों का काम इन सबकी सेवा करना था। क्योंकि इनकी उत्पत्ति ब्रह्मा के पैरों से हुई है. इस प्रकार आर्यों ने शूद्रों को पीढ़ी दर पीढ़ी सिर्फ नौकर बनाये रखने के लिए वर्ण व्यवस्था बना लिया।

इस प्रकार आर्यों ने अपने आपको सत्ता और शीर्ष पर बनाए रखने के लिए अपने हक में एक उध्र्वाधर (खड़ी) समाज व्यवस्था का निर्माण किया। समाज संचालन और उसमें अपना वर्चस्व बनाए रखने के लिए समाज के प्रत्येक महत्वपूर्ण संस्थान जैसे शिक्षा और व्यवस्था पर अपने अधिकार को कानूनी जामा पहना कर अपना अधिकार कर लिया। वर्ण व्यवस्था को स्थाई और सर्वमान्य बनाने के लिए आर्यों ने प्रचार किया कि वेदों कि रचना ईश्वर ने की है और ये वर्ण व्यवस्था भी ईश्वर ने बनाई है. इसलिए इसको बदला नहीं जा सकता है। इस प्रकार मूलनिवासियो को ईश्वर, स्वर्ग और नरक का लोभ एवं भय दिखाकर अमानवीय एवं भेदभावपूर्ण वर्ण व्यवस्था को मानने के लिए बाध्य किया गया। मूलनिवासी अनायरों ने इस अन्यायपूर्ण सामाजिक विधान को मानने से इंकार कर दिया। तत्पश्चात वर्ण व्यवस्था मृतप्राय हो गई और आर्यों की शक्ति और प्रभाव कमजोर होने लगा।[3]

मनु नाम के आर्य ने 'मनुस्मृति' नामक एक और सामाजिक विधान की रचना की। इस विधान में वर्ण व्यवस्था की श्रेणीबद्धता को बनाए रखते हुए एक कदम और आगे बढ़कर वर्ण में जाति और गोत्र की व्यवस्था बनाई। यानि मनु ने एक वर्ण के अन्दर अनेक जातियां बनाई और गोत्र के आधार पर उनमें उच्च से निम्न का पदानुक्रम निर्धारित किया गया, जिससे जातियों के भीतर उच्च और नीच की भावना का जन्म

---

[3] राम शरण शर्मा, शुद्रों का प्राचीन इतिहास, मोतीलाल बनारसी दास पब्लिशर्स प्रा. लि., नई दिल्ली, 1978, पृष्ठ संख्या 8

हुआ। मनु ने यह बताया कि चार वर्णों में से किसी भी वर्ण कि कोई भी जाति अपने से नीचे वर्ण की जाति में कोई रक्त सम्बन्ध यानि शादी विवाह नहीं करेंगे अन्यथा वह अपवित्र और अशुद्ध हो जाएगा। सिर्फ समान वर्ण वाले ही आपस में रोटी-बेटी का रिश्ता कर सकते हैं मनु ने इस नियम को ब्राह्मणों के लिए लागू नहीं किया। ब्राह्मणों को इसकी छूट दी गई कि एक निम्न गोत्र का ब्राह्मण उच्च गोत्र के ब्राह्मण के यहाँ रोटी-बेटी का रिश्ता कर सकता था। इस तरह ब्राह्मणों की आपस में सामूहिक एकता बनी रही. यही नियम क्षत्रिय वर्ण में भी लागू रखा गया, जिससे क्षत्रिय भी एकजुट रहें. वैश्य में यह नियम लागू नहीं हुआ, जिसका परिणाम यह हुआ कि ये आपस में एकजुट नहीं हो सके और उच्च-नीच की भावना के कारण बिखरते रहे।

ऋग्वैदिक वर्ण व्यवस्था में जिसमें सभी मूलनिवासियों को रखा गया था। इसलिए उनमे सामुदिक भावना थी। वो अक्सर संगठित होकर आर्यों की वर्ण व्यवस्था और अमानवीय शोषण का विरोध करते रहते थे। मनु ने मूलनिवासियों की संगठन शक्ति को कमजोर करने के लिए नई चाल चली। उसने मनुस्मृति नामक वर्ण व्यवस्था के नए विधान में शूद्र वर्ण को जातीय पदानुक्रम के साथ-साथ दो जातीय समुदायों में बाँट दिया। शूद्र, समाज की सीढ़ीनुमा वर्णव्यवस्था के सबसे निचले पायदान पर था इसलिए इस वर्ण की जातियों को अछूत भी कहा गया था। ऋगुवैदिक वर्ण व्यवस्था में तो इनसे जबरदस्ती गंदे और अमानवीय काम करवाए जाते थे इसलिए इनको अन्य वर्णों के लोग छूते नहीं थे अर्थात वहां पर कर्म के कारण मूलनिवासियों की स्थिति निम्न थी लेकिन आर्यों ने इस स्थति को स्थिरता प्रदान करने के किए शास्त्रों में पुनर्जन्म के सिद्धांत की रचना की और मनु ने सभी मूलनिवासियों को जिन्हें आर्यों ने अछूत बनाया था को कमजोर, अछूत और गुलाम बनाए रखने के लिए वर्ण व्यवस्था को जाति व्यवस्था में बदल दिया।[4]

मनु की जाति व्यवस्था में जातियों की जनन क्षमता इतनी अधिक है कि आज जातियों की संख्या हजारों में पहुँच गई है और जाति का यह रोग भारत की सीमाएं

[4] प्रीति प्रभा गोयल, भारतीय संस्कृति (जोधपुर राजस्थान ग्रन्थागार, 1998) पृष्ठ संख्या 18

लांघकर अमेरिका और ब्रिटेन तक पहुँच गया है। सनातनधर्म का जो वर्तमान स्वरूप हम देखते हैं, जाति-व्यवस्था को जो निंदनीय स्वरूप हमारे जीवन में ज़हर घोल रहा है, उसकी शुरुआत कैसे हुई, यह एक रहस्य ही है। काफी मगजपच्ची के बावजूद इस बात का कोई निश्चित प्रमाण नहीं मिलता कि जाति-प्रथा कैसे, किनके द्वारा और क्यों अस्तित्व में आई। ऋग्वेद में केवल तीन वर्णों का उल्लेख है। इसमें ब्राह्मण और क्षत्रिय शब्द तो आए हैं, लेकिन वैश्य या शूद्र शब्द का इस्तेमाल नहीं किया गया है। वैदिक काल में भारतीय प्रजा के लिए हरेक जगह विश शब्द का इस्तेमाल हुआ है, जिसका अर्थ बसने वाला होता है। कालांतर में शायद यही वैश्य शब्द में बदल गया। पुरुष सूक्त में एक बार राजन्य और एक ही बार शूद्र शब्द का इस्तेमाल हुआ है, लेकिन उसे तो विद्वान क्षेपक मानते हैं।

जब भारत में आर्यों का आर्येतर जातियों से संपर्क हुआ तो समाज को एक व्यवस्था देने के लिए जातिगत सोपान बनाए। अचरज की बात यही रही कि बाद में वर्ण-व्यवस्था के अंदर से सैकड़ो जातियां बन गईं। विद्वानों का मत है कि सांस्कृतिक रूप से जो जातियां या लोग पिछड़े थे, उनको ही आर्यों ने शूद्र की संज्ञा दे दी। जाति का विभाजन मनु ने बिल्कुल कठोर कर दिया। वैदिक काल में तो यह व्यवस्था बेहद लचीली थी। आर्यों ने जाति-प्रथा का सहारा शायद इसी वजह से लिया कि उनको विविध संस्कृतियों के लोगों को समाज में उनकी सभ्यता के मुताबिक जगह देनी थी। जातिवाद के जरिए समाज में कई दीर्घाएं बनाई गईं, जो अलग संस्कृति और आचार के लोगों को सामाजिक संरचना में जगह मुहैया कराती थी। यहां द्रविड़ जाति के लोग थे, जो आचार-विचार और संस्कृति के स्तर पर बहुत ऊंचे थे। इसके अलावा नीग्रो और अष्ट्रिक जाति के भी लोग थे, जो अधिकतर जंगलों में या नगर जीवन से दूर रहा करते थे। इन लोगों की सभ्यता भी अविकसित थी। इनके अलावा आर्य तो थे ही, जो ख़ुद को सबसे ऊंचा समझते और मानते थे। इसके अलावा, बहुतेरे लोग ऐसे भी थे, जो इन जातियों के बीच परस्पर वैवाहिक संबंध से पैदा हुए थे। कुल मिलाकर उस समय के भारतवर्ष में विविधता खूब थी। कुछ जातियां

बेहद सभ्य थीं, तो कुछ अर्ध-सभ्य, कुछ जातियां ऐसी थी, जो बिल्कुल अविकसित ही थी।

आर्यों ने जब समाज का एकीकरण शुरू किया होगा, तो उनके सामने इन सभी जातियों को उनका यथोचित स्थान देने की चुनौती रही होगी। इसी वजह से वर्णाश्रम का निर्माण किया गया और सभी जातियों को सामजिक पायदान में उनकी जगह दी गई। ऐसा हम अनुमान लगा सकते हैं। जहाँ तक जाति का सवाल है, तो पढ़ाई-लिखाई करने वाले लोग ब्राह्मण हो गए। क्षत्रिय तो राजा और शासक होते ही थे, वैश्यों का व्यापार पर एकाधिकार था, इसलिए जाति व्यवस्था में उनको बहुत अपमानित नहीं किया गया। शूद्रों को अन्य तीन वर्णों की सेवा करने का काम दिया गया। शूद्रों को अन्य तीन वर्णों द्वारा शोषित एवं उपेक्षित किया जाता था।

आज हम जो भी कुछ इस जाति-व्यवस्था में देखते हैं, वह साफ कर देता है कि जातियां केवल पेशों के आधार पर नहीं बनी हैं, बल्कि उनके पीछे सभ्यता और संस्कृति के महीन स्तर भी हैं। जो लोग संस्कृति के स्तर पर ऊंचे थे, उन्होंने महीन काम और लिखाई-पढ़ाई को अपना लिया. हालांकि, पुराने समय में जाति व्यवस्था इतनी संकीर्ण नहीं थी। दरअसल, आर्यों ने समाज के एकीकरण में इस हथियार का खूब इस्तेमाल किया। जाति की प्रथा से भारत के आर्यीकरण का ध्येय भी पूरा होता था। जाति व्यवस्था की कमान ज़ाहिर तौर पर ब्राह्मणों के हाथ में थी और बिना उनकी सहमति के जाति का परिवर्तन नहीं किया जा सकता था। हालांकि, जो लोग आर्यों के रस्मो-रिवाज और रहन-सहन को सीख लेते थे, उनको सामाजिक और जातीय तौर पर ऊंची जगह मिल जाती थी। जाति व्यवस्था में निचला पायदान उन्हीं को मिला जो अखाद्य खाते थे और अपेय पीते थे। तथाकथित ऊंची जातियों से सात्विक जीवन बिताने की उम्मीद की जाती थी। ब्राह्मणों ने बौद्ध धर्म के उदय के बाद ही मांसाहार छोड़ा और जिन जातियों और लोगों ने इसे फिर भी नहीं छोड़ा, उनको ही शूद्र कहा गया।[5]

---

[5] उर्मिला रूस्तगी, मनोस्मृति: एक मूल्यांकन, दिल्ली: जे.पी. पब्लिशिंग हाउस, 1995, पृष्ठ संख्या 36

2.3 अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति की प्राचीन काल में स्थिति

प्राचीनकाल में भारत में वर्ण व्यवस्था लागू थी। ब्राह्मण ऋषियों तथा मनीषियों ने समाज को चार वर्गों में विभाजित किया जिसे चर्तुवर्ण व्यवस्था कहा जाता था। इस वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण वर्ग को सर्वोपरी रखकर उसे स्थायित्व प्रदान करने के लिए सभी वेदों, ग्रन्थों, उपनिषदों, पुराणों तथा स्मृतियों में ऐसे कलात्मक ढंग से समाहित करके धार्मिक रूप दिया कि शेष तीनों वर्ण - क्षत्रिय, वैश्य तथा शूद्र उसे ईश्वर की कृति मानकर उस वर्ण व्यवस्था द्वारा निर्धारित कर्मों का स्वतः पालन करें। वर्ण व्यवस्था में ब्राह्मण को सर्वोपरि उसके बाद क्षत्रिय, क्षत्रिय के बाद वैश्य तथा सबसे नीचे पायदान पर शूद्र को रखा गया। यह वर्ण व्यवस्था कर्म नहीं वरन् जन्म पर आधारित थी और आज भी उसी रूप में मानी जाती है।

वर्ण व्यवस्था के फलस्वरूप भारत में जाति व्यवस्था का उदय हुआ समय के साथ-साथ जातियां और उप-जातियों की संख्या बढ़ती गई और इन जातियों की संख्या हजारों में है। जो अपने-अपने क्षेत्र में ही खानपान तथा विवाह संस्कार आदि करती है वे एक ही जाति मानी जाती है तथा ऐसी एक जाति दूसरी जाति से विवाह आदि संबंध करें तो उसे धर्म विरूद्ध माना जाता है। वर्ण व्यवस्था शुरू से ही जातियों-उपजातियों, अस्पृश्यता और साम्प्रदायिकता की जननी मानी जाती रही है।

चतुर्वर्ण व्यवस्था पर आधारित हिन्दू समाज अपरिवर्तनशील समाज है। भारत में शासक वर्ग वास्तव में ब्राह्मण वर्ग है। उसने अपने बौद्धिक बल से न केवल राजनीतिक शक्ति ही नहीं प्राप्त की वरन् राज्य पर अपना प्रभुत्व बनाये रखा। ऐसा कहा जाता है कि ज्ञान पर किसी का एकाधिकार नहीं होता पन्तु ब्राह्मणों ने विद्या और ज्ञान पर अपना एकाधिकार जमा लिया। 'मनु स्मृति' को कानून के अनुसार पुरोहित, न्यायाधीश और यहां तक कि मंत्रीगण के पद तक ब्राह्मणों के लिए सुरक्षित थे। यहां तक कि सेनापति के पद पर ब्राह्मण की संस्तुति की जाती थी। चतुर्वर्ण व्यवस्था से जनित जातिवाद,

अलगाववाद और साम्प्रदायिकता के कारण ही देश को बंटवारे की आग में से गुजरना पड़ा।[6]

देश जब सैकड़ों वर्षों की गुलामी में के अन्धकार में प्रवेश कर गया तब तो ऐसे समय में ऐसे शास्त्रों के निर्माण हुए जो जातियों को उच्चता और निम्नता पर बल देते थे जिसके कारण समाज में भेदभाव का बल मिला और समाज जातियों के नाम पर बट कर कमजोर हो गया। जाति का आधार कर्म की बजाए जन्म को माना गया। आजादी से पूर्व समाज कई जातियों में बंट चुका था परन्तु सभी जातियां छुटपुट संघर्ष को छोड़कर प्रायः शान्तिपूर्वक एक साथ रहती थी। आजादी के बाद जब से जातियों और जातिवाद को समाप्त करने के प्रयास प्रारम्भ हुए और जातिवाद के विरोध में भाषण शुरू हुए यह जातिवाद की समस्या घटने की बजाए और बढ़ गई। वर्तमान में तो पंचायत स्तर के चुनाव में जातिवाद का बोलबाला हो गया। स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद सभी राजनीतिक दल केवल जातिवाद समाप्त करने की बात करते हैं लेकिन सिद्धान्तः उनका अस्तित्व ही जातिवाद पर टिका हुआ है। पार्टी के पदाधिकारी, चुनावों में प्रत्याशी और यहां तक कि मन्त्रीमण्डल के सदस्यों के लिए भी जातिगत संतुलन की बात कही जाने लगी। जिस जातीय समूह को उचित प्रतिनिधित्व नहीं दिया जाता वह जाति समूह विरोध पर उतर आता और राजनीतिक पार्टी को उसका खामियाजा भी भुगतना पड़ता है।[7]

2.4 दलित शब्द की उत्पत्ति

दलित शब्द की उत्पत्ति कैसे हुई और किस वर्ग को दलित कहा गया इसका कोई स्पष्ट प्रमाण जुटा पाना संभव नहीं है परन्तु इतना अवश्य कहा जा सकता है कि दलित शब्द आधुनिक है। इस नए नामकरण में समाज के सबसे नीचे के तल की कुछ जातियों को दलित कहा गया है। दलित शब्द आधुनिक होते हुए भी दलितपन का इतिहास प्राचीन है। भारतीय वर्ण व्यवस्था ने जब जातियों का रूप धारण किया तब शूद्रों में से एक वर्ग को

---

6 एस. क. पंजम - शूद्रों का प्राचीन इतिहास, दिव्यांश पब्लिकेशंस, 2010, पृष्ठ संख्या 392

7 डॉ. डी.आर. जाटव - डॉ. बी.आर. अम्बेडकर का समाजदर्शन, समता साहित्य सदन, जयपुर, 1990, पृष्ठ संख्या 102

अछूत कहा गया। तब इस वर्ग की स्थिति दयनीय हो गई। फलतः दलितपन का आरम्भ हुआ। यहीं कारण है कि मानक हिन्दी शब्दकोश में दलित का अर्थ दलिद्दर, दरिद्र तथा गया-बीता और बहुत ही निम्न कोटि का कहा गया है। दलित शब्द की भावना प्राचीन है, लेकिन दलित शब्द आधुनिक है। वर्तमान में इस शब्द का प्रयोग व्यापक रूप से हो रहा है।

दलित शब्द की उत्पत्ति संस्कृत धातु दल से हुई है, जिसका अर्थ तोड़ना, हिस्से करना और कुचलना है। संस्कृत-हिन्दी शब्दकोश में दलित का अर्थ, दलन किया हुआ, गिरा हुआ और अविकसित कहा गया है। इसी प्रकार मानव हिन्दी शब्दकोश में दलित का अर्थ, जिसका दलन हुआ हो, मसला या रौंदा गया हो, जो दबाया गया हो, कुचला गया हो अथवा जिसे पनपने या बढ़ने नहीं दिया गया हो और ध्वस्त या नष्ट किया गया हो। अर्थात दलित वर्ग समाज का वह निम्नतम वर्ग है जो उच्च वर्ग के लोगों के उत्पीड़न के कारण आर्थिक दृष्टि से बहुत ही हीन दशा में हो; जैसे दास प्रथा वाले देशों में दास, सामंतशाही व्यवस्था में कृषक और पूंजीवादी व्यवस्था में मज़दूर। एपैलो हिन्दी डिक्शनरी में डिप्रेस्ड का अर्थ अस्पृश्य और डिप्रेस्ड क्लास का अर्थ अछूत जाति कहा गया है। साथ ही दलित शब्द के लिए 'प्डाउन ट्रोडन' शब्द भी प्रयुक्त हुआ है, जिसका अर्थ, पददलित कहा गया है। अतः हिन्दी और संस्कृत शब्द कोशों में दलित का अर्थ, दबाना, नीचा करना, झुकाना, कुचलना, रौंदना, गया-बीता तथा जिसके दुकड़े-टुकड़े हुए हो कहा गया है। परन्तु अग्रेजी से हिन्दी शब्दकोश में डिप्रेस्ड को अस्पृश्य और अछूत जाति माना गया है।[8]

शब्दों के अर्थों में भिन्नता होने के बावजूद इस शब्द का प्रचलन प्राचीन काल में ही आरम्भ हो गया था। प्राचीन काल में दलितों के लिए शूद्र, अतिशूद्र, अन्त्यज और अस्पृश्य शब्दों का.प्रयोग हुआ है और 19वीं शताब्दी में यह शब्द दलित के रूप में प्रयोग किया गया है। डिप्रेस्ड शब्द के नाम से सर्वप्रथम एक संगठन के रूप में प्रार्थना समाज के प्रचारक कर्मवीर बिट्ठल रामजी शिंदे (1873-1944) ने 18 अक्टूबर 1906 में

---

[8] रूपचन्द्र वर्मा, मानक हिन्दी कोष (प्रयाग: साहित्य सम्मेलन 1964) पृष्ठ संख्या 35

सरनारायण राव चदाकर की अध्यक्षता में डिप्रेस्ड क्लास मिशन सोसाइटी आफ इण्डिया की स्थापना की। गांधी जीं ने कहा है कि स्वामी विवेकानन्द ने हमें याद दिलाया है कि ऊंची जाति वालों ने अपने में से कुछ लोगों को दलित बनाया हुआ है। गांधी जी के मत में सारे दलित वर्गों में अस्पृश्य सबसे अधिक दलित कहे जा सकते हैं। धनंजय कीर ने लिखा है कि 1928 में साईमन आयोग के समक्ष पुणे में डॉ भीमराव अम्बेडकर ने दलित और अछूत को एक वर्ग माना है। कीर पुनः लिखते हैं कि इण्डियन लेजिस्तेटिव कमेटी (1916) और साऊथबरो मताधिकार विचार समिति ने अस्पृश्यों को गुनहगार जमात, वन्यजाति और आदिवासी जाति में समाविष्ट किया था, परन्तु लोधियन समिति ने डिप्रेस्ड क्लास यानी अस्पृश्य वर्ग को ही दलित वर्ग स्वीकार किया है। डॉ., भीमराव अम्बेडकर ने गोलमेजसम्मेलन 1931 में अपने मांग पत्र में डिप्रेस्ड वर्ग का प्रयोग किया और 1932 में ब्रिटिश सरकार के साम्प्रदायिक निर्णय में डिप्रेस्ड वर्ग का प्रयोग क्रिया गया है। डा. भीमराव अम्बेडकर को दलित नाम पर आपत्ति थी इसलिए वे गो-सवर्ण हिन्दू या प्रोटेस्टेंट हिन्दू नाम के समर्थक थे, परन्तु उनको यह सफलता नहीं मिली।[9]

इस प्रकार 19वीं और 20वीं शताब्दी के उत्तरार्द्ध तक अछूतों के लिए दलित और हरिजन शब्द का प्रयोग होता रहा। लेकिन 20वीं शताब्दी के अंतिम दशकों में दलित वर्ग के अन्तर्गत पिछडे वर्ग, जनजातियों और महिलाओं को भी दलित कहा जाने लगा। इसलिए इसका आधार व्यापक हो चुका है। परन्तु दलित शब्द का आधार व्यापक होते हुए भी दक्षिण भारत, उडीसा और बिहार जैसे राज्यों में अनुसूचित जातियों को ही दलित वर्ग में मानने की परिपाटी आरम्भ हो रही है। इसलिए दलित केवल वे जातियों हैं, जो परम्परागत रूप से भारतीय समाज में अस्पृश्य होने के कारण सामाजिक, आर्थिक और राजनीतिक रूप से सामाजिक संसाधनों से वंचित रही हैं।[10]

---

9 मो. क. गांधी, सत्य के प्रयोग अथवा आत्म कथा, अहमदाबाद नवजीवन प्रकाशन मंदिर, 1983, पृष्ठ संख्या 102

10 विजय कुमार पुजारी, अम्बेडकर - जीवन और दर्शन, नई दिल्ली: भारतीय बौद्ध महासभा, 1988, पृष्ठ संख्या 52

2.5 डॉ. अम्बेडकर व दलित

डॉ. अम्बेडकर ने कहा कि "दलित समाज का सदस्य होने के कारण सामाजिक अपमान सहन करना पड़ा था इससे उनकी यह सोच बदल गई कि उच्च शिक्षा ग्रहण करने से दलित समाज अपमानों से मुक्त हो जाएगा। इसीलिए उन्होंने दलित समाज के उत्थान और उन्हें अपमानों से मुक्त कराने का बीड़ा उठाया।" उन्होंने जाति प्रथा को समाज का कलंक बताया। डॉ. अम्बेडकर ने दलितों को मंदिरों में प्रवेश के अधिकार के लिए, सार्वजनिक तालाबों से पानी लेने के अधिकारों हेतु आंदोलन चलाया। उन्होंने सितम्बर 1927 ई. को अछूतों के सम्मेलन में मनुस्मृति को जलवाया। उनका यह आंदोलन 1935 ई. तक चला और अंत में वह हिंदू धर्म को अपरिवर्तनशील मानते हुए हिंदू धर्म छोड़कर बाहर से शिक्षा प्राप्त करने पर जोर दिया। 1935 ई. में नासिक सम्मेलन में आयोजित सम्मेलन जिनमें लगभग 10 हजार लोगों ने भाग लिया वह इस निष्कर्ष पर पहुचे कि हिंदू धर्म से विच्छेद करने और अन्य धर्म में बिना किसी आरक्षण के व्यवहार, स्थिति व अवसरों की समानता आश्वस्त करता हो में जाकर आत्मसम्मान प्राप्त करने के अलावा कई रास्ता नहीं क्योंकि हिंदू अछूतों को कभी भी समान अधिकार नहीं दे सकते। डॉ. अम्बेडकर ने इस सम्मेलन में घोषणा की कि, दुर्भाग्य से मैं हिंदू पैदा हुआ हूं इसे रोकना मेरी शक्ति से बाहर था लेकिन मैं आपको दृढ़तापूर्वक यह आश्वासन देता हूं कि मैं एक हिंदू होकर नहीं मरूंगा। 1936 ई. में बंबई में उन्होंने कहा कि, अस्पृश्यता एक स्थायी लडाई है, हिंदुओं की मान्यता के अनुसार जिन्हें सामाजिक व्यवस्था में कोई परिवर्तन स्वीकार नही है, अपृश्यता शाश्वत है। उन्होंने आगे कहा कि, अस्पृश्या के लिए धर्म परिवर्तन के अलावा दूसरा रास्ता नहीं है।

डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने यह देखा कि दलितों के पास खेती के लिए भूमि नहीं थी। धनाभाव के कारण व्यापार नहीं कर सकते थे और अशिक्षा के कारण नौकरियों में स्थान न के बराबर रहा था। ऐसी स्थिति में इनकी जीविका बडी मुश्किल से चलती थी जिसके कारण उनकी आर्थिक स्थिति वहुत ही दयनीय होती चली गई। अम्बेडकर एक अच्छे अर्थशास्त्री थे। 1942 ई. में उन्हें वायसराय के काउंसिल का सदस्य नियुक्त किया

गया और उन्हें भारत सरकार में श्रम विभाग का प्रधान बनाया गया। 1945 ई. में उनकी प्रेरणा से देश भर में रोजगार दफ्तर खोले गए और उनके माध्यम से 1946 ई. में एक विधेयक भी पारित किया गया। उन्होंने मजदूरों जिनमें अधिक दलित ही थे उनकी स्थिति सुधारने के लिए अनेकों नियम बनवाए। उन्होंने दलितों को स्वावलंबी बनने को कहा और साथ ही उनके लिए रोजगार में अवसरों की खोज करने को कहा। अम्बेडकर ने दलितों के राजनैतिक एवं संवैधानिक अधिकारों की भी लडाई लडी और गोलमेज सम्मेलन में उन्होंने दलितों को अलग से प्रतिनिधित्व देने की मांग की।[11]

डॉ. अम्बेडकर के नेतृत्व में दलितों में बढ़ती जागरूकता और संगठन ने भारत सरकार को दलितों की दशा सुधारने के लिए उनकी और ध्यान देने को बाध्य क्रिया। 1966 ई. में केंद्र सरकार ने 'अस्पृश्यता निवारण अधिनियम' पारित किया और देश के विभिन्न प्रातों में भी उसी तरह के नियम व कानून बनाए गए। इसके माध्यम से अस्पृश्यता बरतने वाले को दंड देने का प्रावधान किया गया। दलितों को शिक्षित करने के उद्देश्य से छात्रावासों और छात्रवृत्तियों की व्यवस्था की गई और 1951 से 1956 ई. के बीच 51,902 अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजातियों के आवेदनों में से 47,069 लोगों को छात्रवृत्ति प्रदान की गई। इसमें सिर्फ 1956 में 20458 लोगों को छात्रवृत्ति प्रदान की गइं। आर्थिक क्षेत्र में केंद्रीय व प्रांतीय सरकारों ने दलितों की स्थिति में सुधार लाने के प्रयासों के अंतर्गत बड़ी संख्या में दलितों को नौकरी प्रदान की।

यद्यपि भारत में आरक्षण व्यवस्था को अम्बेडकर की ही देन माना जाता है परन्तु आरक्षण को मूलतः पश्चिमी अवधारणा माना जाता है। अंग्रेजों ने ही सर्वप्रथम आरक्षण का प्रयोग मुस्लिम अल्पसंख्यकों के लिए किया था और दलितों के लिए आरक्षण भी अंग्रेजों ने ही किया था। अम्बेडकर ने भारत में आरक्षण व्यवस्था लागू करने के लिए संघर्ष किया और उसे दलितोउत्थान के लिए सबसे कारगार हथियार बना दिया।

---

[11] डॉ. महेश्वर दत्त - गांधी, अम्बेडकर और दलित (राधा पब्लिकेशन, नई दिल्ली), 2005, पृष्ठ संख्या 133

भारत में आरक्षण व्यवस्था को लागू करने की आवश्यकता के पीछे यहां सदियों से चली आ रही वर्ण व्यवस्था है।[12]

2.6 अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति

भारत ही एक ऐसा देश है जहाँ जातिप्रथा में भेदभाव के कारण जनसंख्या का एक बहुत बड़ा भाग सदियों से पिछडा, उपीहित और तिरस्कृत रहा है। अर्थात् ये निम्न जातियों सामाजिक स्तर पर उच्च जातियों द्वारा छुआछूत के कारण तिरस्कृत, आर्थिक स्तर पर भौतिक संसाधनों से दूर और राजनीतिक स्तर पर नागरिक अधिकारों से वंचित रही हैं। दुर्भाग्य का विषय यह है कि यह निम्न जातियों अपने ही देश में अमानवीय जीवन जीती रही हैं। ऐसा कब, क्यों और कैसे हुआ इसका विवेचनपूर्व में किया जा चुका है? यहां पर कंवल इतना कहा जा सकता है किं इतिहास में एक ऐसा कलंकित काल अवश्य आया, जब इन्हें चारों वर्णों से बाहर कर दिया गया और समय-समय पर इन्हें कई नामों से पहिचाना गया, जैसे: चाण्डाल, शूद्र, अछूत, अतिशूद्र, अन्ताज, पचंमवर्ण, हरिजन, दलित और वर्तमान में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जन जातियां। जहाँ हरिजन और दलित शब्द हिन्दू समाज के भीतर से उपजे हैं, वहीं अनुसूचित जाति शब्द अंग्रेज प्रशासकों की देन है।

वास्तविकता यह है कि 1930-31 के गोलमेज सम्मेलन से ब्रिटिश प्रशासकों ने यह तय कर लिया था कि जो जातियां हिन्दू समाज में किसी न किसी कारण से उपेक्षित रही हैं, उनकी एक अनुसूची बनाई जाए। इसलिए 1931 की जनगणना में इन जातियों की एक सूची तैयार की गई और गांधी तथा अम्बेडकर समझौता पूना पैक्ट (1932) के बाद यह जरूरी हो गया कि इन्हें राजनीतिक आरक्षण का लाभ दिया जाए। इसलिए भारत सरकार अधिनियम 1935 में पहली बार अनुसूचित जाति शब्द का प्रयोग हुआ। दूसरें शब्दों में दलितों की एक अलग पहचान बनाने के लिए एक अनुसूची बनायी गई, जिसके आधार पर इन्हें अनुसूचित जाति कहा गया। इस प्रकार दलितों को हिन्दू धर्म से अलग

---

[12] धनन्जय कीर - डॉ. अम्बेडकर: लाईफ एण्ड मिशन (बम्बई पॉपुलर प्रकाशन, 1990) पृष्ठ संख्या 104

करने की ब्रिटिश सरकार की एक साजिश थी। परन्तु गांधी जी और डॉ अम्बेडकर के अथक प्रयासों से न केवल वह साजिश असफल हुई बल्कि सामाजिक, आर्थिक और शैक्षणिक दृष्टि से वे सभी जातियां सूचिबद्ध की गई जो सदियों से पिछडी और अस्पृश्य मानी जाती थी। अतः संविधान के अनुच्छेद 341 और 342 में ऐसी जातियों को सूचीबद्ध करने के पचात् उन्हें अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति से न केवल सम्बोधित किया गया, बल्कि सरकार को यह संवैधानिक अधिकार भी दिया गया कि वे इन जातियों के लोगों के कल्याण हेतु योजनाओं का सृजन करे।

इस आधार पर कहा जा सकता है कि अनुसूचित जाति शब्द की उत्पत्ति का मुख्य कारण हिन्दू समाज में पीड़ित और तिरस्कृत वर्ग को विशेष सुविधाएं प्रदान करने के लिए सूचीबद्ध करने के कारण हुआ। परन्तु वर्तमान में अनुसूचित जातियां जहाँ एक ओर दलित शब्द को की हर्ष से स्वीकार कर रही है, यहीं दूसरी और आरक्षण के लाभ के कारण अनुसूचित जाति ही बने रहना चाहती है।[13]

दलित का शाब्दिक अर्थ दबाया या कुचला हुआ है। वास्तव में दलित से अभिप्राय उस व्यक्ति या जाति या समुदाय से है जो धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक अर्थात् सभी क्षेत्रों में उपेक्षित और दबा हुआ है दलित शब्द का चलन 20वीं शताब्दी के दूसरे दशक में 1919 में मांटेयू चैम्सफोर्ड अधिनियम में पहली बार हुआ और 1932 के पूना पैक्ट फे बाद डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने अछूतों के लिए डिप्रेस्ड क्लास (अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति) शब्द का इस्तेमाल किया।

दलित शब्द को परिभाषित करते हुए कुछ विद्वानों ने इसे एक वर्गीय शब्द बतलाया है और इसके अतर्गत न सिर्फ अछूतों को ही अपितु अभावग्रस्त ब्राहमण, क्षत्रिय, वैश्य आदि सभी वर्गों व जातियों को, जिनकी आर्थिक स्थिति खराब हो और जो विभिन्न प्रकार के अभावों में जीता है, सम्मिलित किया है, किंतु वास्तव में 'दलित' से अभिप्राय उस व्यक्ति या समुदाय से है जो धार्मिक, सामाजिक, आर्थिक, सांस्कृतिक व राजनैतिक अर्थात सभी क्षेत्रों में उपेक्षित और दबा हुआ है।

---

[13] वी.पी. आप्टे - आरक्षण नीति हमारा संविधान (मंथन, वर्ष-4 अंक-2 फरवरी 1982) पृष्ठ संख्या 9-12

वर्तमान में दलित शब्द प्रायः शूद्र, अतिशूद्र, चांडाल, मेहतर, आदिवासी आदि अछूत जातियों के लिए किया जाता है। दलित वर्ग में गिनी जाने वाली जातियों और समुदायों का निर्धारण ब्रिटिश सरकार द्धारा एक निश्चित मापदंड के अनुसार किया गया और यह कहा गया कि दलित वर्ग में ऐसी जातियां हैं जिनके शारीरिक स्पर्श से सवर्ण हिंदू अपने को अपवित्र मानते हैं। इस संज्ञा का प्रयोग किसी व्यवसाय के संबंध में नहीं बल्कि ऐसी जातियों के संबंध में है जिन्हें हिन्दू समाज ने परंपरागत स्थान के कारण मंदिरों में प्रवेश की अनुमति नहीं दी है। जिन्हें अलग से पानी लेना पड़ता है या पाठशालाओं के भवन में बैठकर नहीं बल्कि उसके बाहर खड़े रहकर शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है। डॉ. अम्बेडकर ने भी उन्हीं जातियों को दलित माना जो अपवित्रकारी होती हैं। वर्तमान समय में सरकार दलित का सीधा अर्थ अनुसूचित जाति या जनजाति से लगाती है।[14]

प्राचीन काल में वर्णव्यवस्था के अंतर्गत सभी वर्णों के अधिकार व कर्तव्य सुनिश्चित कर दिए गए थे। प्रारंभ में यह व्यवस्था गुण एवं कर्म पर आधारित थी किंतु बाद में चलकर जन्म पर आधारित हो गई और उसका विकृत रूप जाति-प्रथा के रूप में विकसित हुआ और कालांतर में जातियों में भी उपजातियों बनने लगी इस व्यवस्था का सबसे बड़ा दोष यह था कि जो जिस जाति या उपजाति में पैदा उसे उसी जाति में मरना पड़ता।

'दलित' शब्द का चलन बीसवीं शताब्दी के दूसरे दशक में हुआ। पिछडा वर्ग आयोग रिपोर्ट के अनुसार इस शब्द का पहली बार प्रयोग 1919 ई. में हुआ। मांटेस्कूचेम्सफोर्ड सुधार अधिनियम द्वारा अखिल भारतीय स्तर पर दलित वर्ग के लिए अनेक सरकारी निकायों में प्रतिनिधित्व प्रदान किया गया और इसी के अनुरूप 1919 में अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों और बहिष्कृत जातियों के लिए 'दलित' शब्द मान्य हो गया। डॉ. भीमराव अम्बेडकर ने 1932 के पूना पैक्ट के बाद अछूतों के लिए 'डिप्रेस्ड' शब्द का इस्तेमाल किया। गांधी जी ने अछूतों के लिए 'हरिजन' शब्द देकर भले

---

[14] विमल चन्द्र पाण्डेय - प्राचीन भारत का राजनैतिक तथा सांस्कृतिक इतिहास (इलाहाबाद: सेन्ट्रल पब्लिसिंग हाउस, 1998) पृष्ठ संख्या 111

ही उक्त भाव देने का कार्य किया हो किंतु भारतीय इतिहास में 'हरिजन' देवदासियों की संतानों के लिए इस्तेमाल क्रिया जाता था और ऐसा नहीं था कि गांधी जी भारतीय इतिहास से अपरिचित रहे हो। गांधी जी द्धारा दलितों के लिए 'हरिजन' शब्द नाम दिए जाने का विरोध हुआ और भारत सरकार के गृह मंत्रालय के दिनांक 10 फरवरी 1988 के पत्र के क्रम में भारत सरकार कल्याण मंत्रालय ओ.एम. नं. 12025/14/90-एस3.सी.डी. (आर.एल. सेल) दिनांक 16 अगस्त 1990 के आदेश द्वारा 'हरिजन' शब्द के प्रयोग पर प्रतिबंध लगाया गया और इसकी जगह अनुसूचित जाति तथा अनुसूचित जनजाति का प्रयोग होने लगा तथा इसे 'दलित' शब्द के रूप में भी खुलकर प्रयोग क्रिया जाने लगा और आज सर्वाधिक लोकप्रिय शब्द बन गया है। 'दलित' शब्द आज प्राय शूद्र, अतिशूद्र, चांडाल, मेहतर, हरिजन, आँदेवासी आदि अछूत जातियों के लिए इस्तेमाल किया जाता है।[15]

दलित वर्ग में गिनी जाने वाली जातियों और समुदायों का निर्धारण करने का एक सरकारी मापदंड 1931 में भारत के जनगणना आयुक्त डॉ. हटन ने दिया था। उनका कहना था कि निम्नलिखित तथ्यों के आधार पर किसी जाति को दलित वर्ग की सूची में रखा जा सकता है -

1. कोई जाति या वर्ग ऐसा है या नहीं जिसे ब्राह्मण अशुद्ध न मानते हो और उनकी सेवा करने के लिए तैयार हो।
2. उस जाति या वर्ग को सेवा यही नहीं कहार या दर्जी कर सकते हैं या नहीं जो बाकी हिंदुओं की सेवा करते हो।
3. उस जाति के साथ स्पर्श हो जाने से सवर्ण हिंदू अपने को अपवित्र मानता है, या नहीं।
4. उस जाति या वर्ग के किसी सदस्य के हाथ से सवर्ण हिंदू पानी पीने को तैयार है या नहीं।

---

15 भीमराव अम्बेडकर, शूद्र कौन और कैसे, बहुजन कल्याण प्रकाशन, 1989, पृष्ठ संख्या 171

5. किसी जाति या वर्ग को सड़कों, नावों, कुओं और स्कूलों का प्रयोग किए जाने की अनुमति है या नहीं।

6. किसी जाति या वर्ग को हिंदू मंदिरों में प्रवेश की अनुमति है या नहीं।

7. सामाजिक मेल-मिलाप में किसी जाति या वर्ग के सुशिक्षित व्यक्ति को वैसे ही सुशिक्षित सवर्ण जाति के लोग अपने बराबर मानते हैं या नहीं

8. कोई जाति या वर्ग केवल अपने अज्ञान, अशिक्षा या निर्धनता के कारण पिछडा हुआ है या नहीं, और यदि ऐसा न होता तो समाज में उसे नीचा न समझा जाता।

9. कोई जाति अपने व्यवसाय के कारण दलित है या नहीं और यदि वह उस व्यवसाय में न होता तो उसे समाज में नीचा न माना जाता।

दलित जातियों की व्याख्या करते हुए जनगणना आयुक्त ने यह भी कहा कि दलित वर्ग ऐसी जातियां हैं जिनके साथ छू जाने से सवर्ण हिंदू अपने को अपवित्र मानते हैं। इस संज्ञा का प्रयोग किसी व्यवसाय के सदर्भ में नहीं है बल्कि ऐसी जातियों के संदर्भ में है जिन्हें हिंदू समाज ने परंपरागत स्थान के कारण मंदिरों में जाने की अनुमति नहीं दी है, जिन्हें अलग कुओं से पानी लेना पड़ता है या पाठशाला के भवन में बैठकर नहीं बल्कि उसके बाहर खड़े रहकर शिक्षा प्राप्त करनी पड़ती है।[16]

डॉ. अम्बेडकर ने भी उन जातियों को ही डिप्रेस्ड क्लास माना है जो अपवित्रकारी होती है। इनमें निम्न श्रेणी के कारीगर, धोबी, भंगी, बसोक, सेवक, चमार, डोमारी (मरे पशुओं क्रो उठाने वाला), सउरी (प्रसूति गृह का कार्य करने वाला), ढोला, डफली बजाने वाले आदि आते हैं। कुछ जातियां परंपरागत काम करने के अलावा कृषि मजदूरी का कार्य करती हैं। कुछ दिनों पूर्व तक इनकी स्थिति अर्द्धः दास बंधुआ मजदूरी जैसी रही है।

माता प्रसाद ने उत्तरप्रदेश की दलित जातियों के दस्तावेज में निम्न जातियों की गणना दलितों में की है:

---

[16] मो. क. गांधी - सम्पूर्ण वाड्मय खण्ड 56 - 1974, पृष्ठ संख्या 254

1. अनुसूचित जातियां

2. अनुसूचित जनजातियां

3. भूतपूर्व अपराधकर्मी जातियां और घुमंतूजातियां

4. अत्यधिक पिछडी जातियां

5. पिछडी जातियां

किंतु माता प्रसाद के विचारों से सहमत होना संभव नहीं है क्योंकि बहुत सी पिछडी जातियां उन जातियों द्वारा उपेक्षित व अस्पृश्य नहीं हैं। यह सच है कि सभी पिछडी जातियां दबाई गई थी किंतु बहुत से पिछडे वर्ग के लोग यह स्वीकार नहीं करते हैं और दलितों द्वारा जो संपूर्ण शूद्रों की लडाई लडी जाती थी उन्हें दलितों की समस्या बताकर उनसे अपने को अलग कर लेते हैं और यह भूल जाते हैं कि हिंदू धर्म शब्दों, वेद, पुराणों, स्मृतियों आदि द्वारा जितने भी प्रतिबंध लगाए गए वह शूद्रों पर ही लगाए गए न कि अलग से अछूतों पर। वास्तव में अनुसूचित जाति और अनुसूचित जनजाति के लोग ही दलितों की श्रेणी में जाते हैं। वर्तमान समय में दलित का सीधा अर्थ अनुसूचित जाति व अनुसूचित जनजाति के लोगों से ही है।[17]

भारत में हिंदू समाज वैदिक काल में चार वर्णों - ब्राह्मण, क्षत्रिय, वैश्य और शूद्र में विभाजित किया गया और सभी वर्णों के अधिकार व कर्तव्य सुनिश्चित कर दिए गए। प्रारंभ में वर्ण-व्यवस्था गुण व कर्म पर आश्रित थी, किंतु बाद में चलकर जन्म पर आधारित हो गई। इसका विकृत रूप जाति-प्रथा के रूप में विकसित हुआ और कालांतर में उपजातियों में विभाजन होने लगा। शूद्रों के अतंर्गत सैकडों उपजातियां बन गई। इनमें भी कुछ जातियों को हेय एवं नीच माना गया और अस्पृश्य या अछूत घोषित किया गया। प्राचीन काल में विशेष रूप से गुप्त काल में, जो स्वर्ण युग माना जाता है, अस्पृश्य या अछूत जातियों की स्थिति सर्वाधिक दयनीय थी। मध्यकाल में भी 'अंत्यज' कहलाने

---

[17] एम.एन.श्रीनिवास - इण्डिया: सोसल स्ट्रक्चर (दिल्ली: हिन्दुस्तान पब्लिसिंग कॉर्पोरेशन, 1982), पृष्ठ संख्या 65-66

वाली जातियों की स्थिति यथावत बनी हुई थी। अंग्रेजी ईस्ट इंडिया कंपनी के शासनकाल में भी उनकी ओर कोई ध्यान नहीं दिया गया और उच्च जातियों में फैली कुरीतियों को समाप्त करने के उद्देश्य से ही कुछ सामाजिक कानून बनाए गए। ईसाई मिशनरियों के धर्म परिवर्तन अभियान का शिकार सबसे अधिक अस्पृश्य जातियों के लोग ही हुए किंतु पाश्चात्य विचारों से प्रभावित होकर परिवर्तन के समर्थक सुधारकों का उदय 19वीं शताब्दी में हुआ।

ब्रह्म समाजियों, आर्य समाजियों, प्रार्थना समाजियों एवं अन्य में बहुत से सुधारवादियों ने जाति प्रथा पर प्रहार किया और अस्पृश्य को भी कुछ अधिकार देने की बात कही। उन्होंने वेदाध्ययन एवं शिक्षा ग्रहण करने का अधिकार दिए जाने की बात की। किंतु इनका प्रयास उच्च जातियों तक ही सीमित रहा और दलितों की स्थिति सुधारने में वे सहायक नहीं हो सके। सरकारी विद्यालयों में अस्पृश्य को प्रवेश लेने का अधिकार दिया गया किंतु उच्च जातियों के उत्पीड़न के कारण दलित इसका-लाभ उठाने से वंचित रह गए।

सामाजिक सुधार के उद्देश्य से गांधी जी की भाषा में हरिजनोद्धार बड़ा ही महत्वपूर्ण माना गया। उन्होंने इसे अन्याय व दमन के विरुद्ध एक महान संघर्ष बताया। उनके इस आंदोलन की विशेषता यह थी कि उन्होंने दलितों को इसमें सम्मिलित नहीं किया क्योंकि उनका मानना था कि 'हरिजन' इतनी गिरी अवस्था में है कि वे अपने अधिकारों की मांग करने में असमर्थ हैं। उन्होंने दलितों के प्रति अन्याय करने वाले समूह के सदस्यों द्वारा ही इस अन्याय का विरोध करने को कहा। उन्होंने दलितों के मंदिर प्रवेश को लेकर ट्रावनकोर में वायकोम सत्याग्रह चलाया जिसमें वहीं के महाराजा ने गांधी जी के सत्याग्रह की भौतिक विजय स्वीकार करते हुए दलितों को मंदिर प्रवेश की राजाज्ञा जारी की। गांधी जी के विचारों का देशी नरेशों पर भी प्रभाव पड़ा। गांधी जी ने अस्पृश्यता

की निदा की और यहीं तक कहा कि अस्पृश्यता यदि हिंदू धर्म का अभिन्न अंग है तो मैं ऐसे हिंदू धर्म को अपनाना कतई पसंद नहीं करूंगा।[18]

अमेरिका के श्याम वर्णी लोगों का संघर्ष हो या भारत के दलितों का, दोनों उस वंचना से मुक्ति चाहते थे जिसके कारण उनका कोई परिचय था ही नहीं और यदि था तो माल-मवेशियों जैसा विकृत और दूषित। अमेरिका के अश्वेत दासत्व भोगने को विवश किए गए और उन्हें वैवाहिक पारिवारिक जीवन का भी अधिकार नहीं था। भारत में दलितों की स्थिति दासत्व की थी, परन्तु उन्हें परिवार सुख उपलब्ध था। उनकी यह स्थिति उनकी भाषा, आवास, वस्वाधरण अर्थात आचार-व्यवहार के प्रत्येक पहलू में दिखाई पड़ती थी।

उन्नीसवीं शताब्दी के पूर्वाद्ध तक वंचित वर्ग का अधिसंख्य कठिन श्रम और स्वामिभक्ति को अपने आप में पुरस्कार मानता था, उनके लिए उसे कोई मूल्य और लाभ मिले यह कल्पनातीत सा था। धीरे-धीरे अंग्रेजी शासन तथा उसके अनुगामी ईसाई मिशनरियों के क्रियाकलाप एवं अंग्रेजी शिक्षा ने स्थिति बदल दी। धर्मांतरण तथा स्वास्थ्य, रक्षा, शिक्षा व्यवस्था और कईं अन्य प्रकार के सामाजिक कल्याण के कार्यों ने इक्का-दुक्का ही सही वचितों को नए परिचय से समन्वित किया तथा उनके लिए सरकारी नौकरियों के दरवाजे खोल दिये जो धर्मनान्तरण से विमुख थे। उन दलितों के लिए धर्मान्तरित का नवीन परिचय ईष्र्याकारक था। उन्सीसवीं शताब्दी में क्रमश उन जातियों द्वारा निर्देशित समाज सुधार आन्दोलनों ने भी किसी न किसी सीमा तक वंचितों की स्थिति में सुधार के लिए समतामूलक कानून, उदार शिक्षा तथा अन्य कदम उठाये जाने की बातें की गई। इन्हीं परिस्थितियों में भारत का राष्ट्रीय आंदोलन अग्रसर हुआ जो एक साथ औपनिवेशिक शासन की समाप्ति तथा वंचितों के सामाजिक-आर्थिक उन्नयन के लिए किया जाने वाला संघर्ष था। इस सबका समन्वित परिणाम था कि दलित वर्ग में चेतना का जागरण हुआ और वह अपनी स्थिति में सुधार के लिए यत्न करने लगा। उसमें से ऐसे लोग आगे बढे जो नेतृत्व कला में सक्षम थे और किसी न किसी रूप में अब उच्च

---

[18] मो. क. गांधी - सम्पूर्ण वाड्मय खण्ड 19 - 1966, पृष्ठ संख्या 554

जातीय नेतृत्व से अपनी पृथक पहचान बनाने में समर्थ थे, बल्कि कहना चाहिए कि उच्च जातीय नेतृत्व में अमावस्या को बिना संकोच के स्पष्ट करने लगे।

यह परिवर्तन बीसवीं शताब्दी की विशिष्टता कहा जा सकता है दलित जातियों ने कहीं और कभी संस्कृतिकरण की प्रक्रिया अपनाकर उच्चतर जातियों की तरह यज्ञोपवीत धारण करने अथवा पौरोहित्य कर्म अपनाने के कार्य किए तो अन्यत्र वेदिक संस्कृति और धर्म का परित्याग कर नए धर्म के अवलम्बन का मार्ग अपनाया। पुनर्जन्म, द्वैतवाद, स्वर्ग-नरक, पाप व पुण्य आदि की अवधारणाओं को जातिवादी हिंदू व्यवस्था के शोषण का साधन बताया वर्ग-संघर्ष आधारित विचारों को अपनाकर कतिपय परिस्थितियों में इन जातियों ने धार्मिक, सांस्कृतिक शोषण के अतिरिक्त जमीदारों, पूंजीपतियों तथा महाजनों जैसे आर्थिक शोषकों के विरोध के माध्यम से भी अपना परिचय स्थापित करने की चेष्टा की। शिक्षित नेतृत्व के कारण अब वे नागरिक अधिकारों की भी बातें करने लगे।[19]

2.7 संवैधानिक स्थिति

भारतीय संविधान के अनुच्छेदों में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति वर्ग को आरक्षण का लाभ देने के लिए प्रावधान किये गये है। कुछ मुख्य अनुच्छेद इस प्रकार है –

अनुच्छेद 330

संविधान के अनुच्छेद 330 के द्वारा लोकसभा में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के लिए आरक्षण का प्रावधान किया गया है। इस प्रावधान द्वारा इन जातियों के लिए सीटों का आरक्षण किया गया है। इस अनुच्छेद के अनुसार स्थानों का प्रावधान इस प्रकार किया गया -

1. अनुसूचित जातियों के लिए।

---

[19] भीमराव अम्बेडकर - सम्पूर्ण वाड्मय खण्ड 1, नई दिल्ली, सूचना और प्रसारण मंत्रालय, भारत सरकार, तृतीय संस्करण, 1998, पृष्ठ संख्या 92

2. अनुसूचित जनजातियों के लिये असम के स्वशासी जिले की अनुसूचित जातियों को छोड़ कर।

3. असम की स्वशासी जिलों की अनुसूचित जातियों के लिये स्थान आरक्षित रहेंगे।

4. खण्ड (1) के अनुसार किसी संघ या राज्य क्षेत्र में अनुसूचित जातियां एवं जनजातियों के लिये आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात लोकसभा में उस राज्य को आवंटित स्थानों की कुल संख्या से यथाशक्य वही रहेगा जो यथास्थिति उस राज्य की अनुसूचित जातियों की एवं जनजातियों की जिनके सम्बन्ध में स्थान इस प्रकार आरक्षित है। जनसंख्या का अनुपात उस राज्य की कुल जनसंख्या से है। असम के स्वशासी जिले की अनुसूचित जनजातियों के लिए आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुपात उस राज्य को आवंटित स्थानों की कुल संख्या के अनुपात में कम नहीं होगा।

अनुच्छेद 332

अनुच्छेद 332 के अनुसार राज्य की विधानसभाओं में अनुसूचित जातियों व जनजातियों के लिये स्थानों का आरक्षण -

1. प्रत्येक राज्य की विधानसभा में अनुसूचित जातियों के लिये और जनजातियों के लिये (असम के स्वशासी जिलों की जनजातियों को छोड़कर) स्थान आरक्षित रहेंगे।

2. असम राज्य की विधानसभा में स्वशासी जिलों के लिये स्थान आरक्षित रहेंगे।

3. खण्ड (1) के अधीन किसी राज्य की विधानसभा में अनुसूचित जातियां एवं जनजातियों के लिये आरक्षित स्थानों की संख्या का अनुमान उस विधानसभा के स्थानों की कुल संख्या के यथाशक्य वही होगा जो उस राज्य की अनुसूचित जातियों की अथवा उस राज्य की या उस राज्य के भाग की अनुसूचित जनजातियों की जिनके सम्बन्ध में इस प्रकार स्थान आरक्षित है, जनसंख्या का अनुपात उस राज्य की कुल जनसंख्या से है।

(3क) खण्ड (3) में किसी बात के होते हुए भी सन् 2001 के पश्चात् की गई पहली जनगणना के आधार पर अरूणाचल प्रदेश, मेघालय, मिजोरम, नागालैण्ड राज्यों की विधानसभा के स्थानों की संख्या के अनुच्छेद 170 के अधीन पुनः समायोजन के प्रभावी होने तक जो स्थान ऐसे किसी राज्य की विधानसभा में अनुसूचित जनजातियों के लिये आरक्षित किये जायेंगे वे -

(क) यदि संविधान 57वां संशोधन अधिनियम 1987 के प्रवृत्त होने की तारीख को ऐसे राज्य की विद्यमान विधानसभा में सभी स्थान अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों द्वारा धारित है, तो एक स्थान को छोड़ कर सभी स्थान होंगे।

(ख) किसी अन्य दशा में उतने स्थान होंगे जिनकी संख्या का अनुपात स्थानों की संख्या के उस अनुपात में कम नहीं होगा जो कि विद्यमान विधानसभा में अनुसूचित जनजातियों के सदस्यों की (उक्त तारीख को यथा विद्यमान) संख्या का अनुपात विद्यमान विधानसभा में स्थानों की कुल संख्या से है।

4. असम राज्य की विधानसभा में किसी स्वशासी जिले के लिये आरक्षित स्थानों के उस अनुपात से कम नहीं होगा जो उस जिले की जनसंख्या का अनुपात उस राज्य की कुल जनसंख्या से है।

5. असम में स्वशासी जिले के लिये आरक्षित स्थानों के लिये निर्वाचन क्षेत्रों में उस जिले के बाहर का कोई क्षेत्र समाविष्ट नहीं होगा।

6. कोई व्यक्ति जो असम राज्य के किसी स्वशासी जिले की अनुसूचित जनजाति का सदस्य नहीं है, उस राज्य की विधानसभा के लिये उस जिले के किसी निर्वाचन क्षेत्र से निर्वाचित होने का पात्र नहीं होगा।[20]

---

[20] दुर्गादास बासु - भारतीय संविधान का परिचय, (प्रिन्टिंग हॉल ऑफ इण्डिया, 1996) पृष्ठ संख्या 832

अनुच्छेद 338

अनुच्छेद 338 के अनुसार अनुसूचित जातियों, अनुसूचित जनजातियों आदि के लिए अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति आयोग की स्थापना की गई है जिसके लिए आयुक्त नाम से विशेष अधिकारी नियुक्त किया गया है।

1. अनुसूचित जाति एवं जनजातियों के लिये एक विशेष अधिकारी होगा जिसे राष्ट्रपति नियुक्त करेगा।

2. विशेष अधिकारी का यह कत्र्तव्य होगा कि अनुसूचित जातियों तथा जनजातियों के लिये इस संविधान के अधीन उपबन्धित रक्षा उपायों से सम्बन्धित सभी विषयों का अन्वेषण करें और उन रक्षापायों के कार्यकरण के सम्बन्ध में ऐसे अन्तरालों पर जो राष्ट्रपति निर्दिष्ट करें। राष्ट्रपति को प्रतिवेदन दे और राष्ट्रपति ऐसे सभी प्रतिवेदनों को संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखवायेगा।

3. इस अनुच्छेद में अनुसूचित जातियों एवं जनजातियों के प्रति निर्देश का यह अर्थ लगाया जाएगा कि इसके अन्तर्गत ऐसे अन्य पिछड़े वर्गों के प्रति निर्देश जिनको राष्ट्रपति अनुच्छेद 340 के खण्ड 1 के अधीन नियुक्त आयोग के प्रतिवेदन की प्राप्ति पर आदेश द्वारा विनिर्दिष्ट करें और आंग्ल भारतीय समुदाय के प्रति निर्देश भी हैं।

अनुच्छेद 339

अनुच्छेद 339 के अनुसार अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के बारे में संघ का नियन्त्रण होगा।

1. राष्ट्रपति राज्यों के अनुसूचित क्षेत्रों के प्रशासन और अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के बारे में प्रतिवेदन देने के लिये आयोग की नियुक्ति आदेश द्वारा किसी भी समय कर सकेगा। आदेश में आयोग की संरचना, शक्तियां और प्रक्रिया परिनिश्चित की जा सकेगी और उसमें ऐसे सहायक उपबन्ध समाविष्ट हो सकेंगे जिन्हें राष्ट्रपति आवश्यक या वांछनीय समझे।

2. संघ की कार्यपालिका का विस्तार किसी राज्य को ऐसे निर्देश देने तक होगा जो उस राज्य की अनुसूचित जनजातियों के कल्याण के लिये, निर्देश के आवश्यक बताई गई योजनाओं को बनाने और निष्पादन के बारे में है।

अनुच्छेद 340

अनुच्छेद 340 के अनुसार पिछड़े वर्ग की दशाओं के अन्वेषण के लिये आयोग की नियुक्ति।

1. राष्ट्रपति भारत के राज्य क्षेत्र के अन्दर सामाजिक और शैक्षणिक दृष्टि से पिछड़े वर्ग की दशाओं के और जिन कठिनाईयों का वे सामना कर रहे हैं। उनके अन्वेषण के लिये उन कठिनाईयों को दूर करने और उनकी दशा को सुधारने के लिये संघ या राज्य जो अनुदान किये जाने चाहिये और जिन शर्तों के अधीन वे अनुदान किये जाने चाहिये। उनके बारे में सिफारिश करने के लिये आदेश द्वारा एक आयोग नियुक्त कर सकेगा जो ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बनेगा जो वह ठीक समझे कर सकेगा जो ऐसे व्यक्तियों से मिलकर बनेगा जो वह ठीक समझे और ऐसे आयोग की नियुक्ति करने वाले आदेश आयोग द्वारा अनुसारण की जाने वाली प्रक्रिया परिनिश्चित की जाएगी।
2. इस प्रकार आयोग अपने को निर्देशित विषयों का अन्वेषण करेगा और राष्ट्रपति को प्रतिवेदन देगा जिसमें उसके द्वारा पाए गए तथ्य उपवर्णित किये जायेंगे और जिसमें ऐसे सिफारिशें की जाएगी जिन्हें आयोग उचित समझेगा।
3. राष्ट्रपति इस प्रकार दिए गए प्रतिवेदन की एक प्रति उस पर की गई कार्यवाही को स्पष्ट करने वाले ज्ञापन सहित संसद के प्रत्येक सदन के समक्ष रखा जाएगा।

अनुच्छेद 341 के अनुसार अनुसूचित जातियां

1. राष्ट्रपति किसी राज्य या संघ क्षेत्र के सम्बन्ध में और जहाँ वह राज्य है, उसके राज्यपाल से परामर्श करने के पश्चात् लोक अधिसूचना द्वारा उन जातियों, मूल वंशों या जनजातियों के भागों या उनमें से यूथों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा जिन्हें

इस संविधान के प्रयोजनों के लिये (यथास्थिति) उस राज्य संघ, राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में अनुसूचित जातियां समझा जाएगा।

2. संसद विधि द्वारा किसी जाति, मूल वंश या जनजाति को अथवा जाति, मूल वंश या जनजाति के भाग या उसमें से यूथ को खण्ड 1 के अधीन निकाई गई अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अनुसूचित जातियों की सूची में सम्मिलित कर सकेगी या उसमें से अपवर्जित कर सकेगी परन्तु जैसा ऊपर कहा गया है उसके सिवाय उपखण्ड के अधीन निकाली गई अधिसूचना में किसी पश्चातवर्ती अधिसूचना द्वारा परिवर्तन नहीं किया जायेगा।

अनुच्छेद 342 के अनुसार अनुसूचित जनजातियां

1. राष्ट्रपति किसी राज्य या संघ क्षेत्र के सम्बन्ध में और जहाँ वह राज्य है, उसके राज्यपाल से परामर्श करने के पश्चात् लोक अधिसूचना द्वारा उन जनजातियों, जनजाति समुदाय के भागों या उनमें से यूथों को विनिर्दिष्ट कर सकेगा जिन्हें इस संविधान के प्रयोजनों के लिये (यथास्थिति) उस राज्य संघ, राज्य क्षेत्र के सम्बन्ध में अनुसूचित जनजातिं समझा जाएगा।

2. संसद विधि द्वारा किसी जनजाति, जनजाति समुदाय को अथवा किसी जनजाति या जनजाति समुदाय के भाग या उसमें से यूथ को खण्ड 1 के अधीन निकाई गई अधिसूचना में विनिर्दिष्ट अनुसूचित जनजातियों की सूची में सम्मिलित कर सकेगी या उसमें से अपवर्जित कर सकेगी परन्तु जैसा ऊपर कहा गया है उसके सिवाय उपखण्ड के अधीन निकाली गई अधिसूचना में किसी पश्चातवर्ती अधिसूचना द्वारा परिवर्तन नहीं किया जायेगा।[21]

इस प्रकार प्राचीनकाल का शूद्र वर्ण, वर्तमान में दास, दस्यु, अछूत, एक तिरस्कृत वर्ग, हरिजन, दलित, अवर्ण, और परिगणित जातियों से उभरकर महात्मा गाँधी एवं डॉ. भीमराव अम्बेडकर के प्रयासों से संविधान में इन जातियों के लिए अलग से प्रावधान कर वर्तमान में अनुसूचित जाति एवं अनुसूचित जनजाति के रूप में स्थापित है।

---

[21] जे. एन. पाण्डेय - भारतीय संविधान (सेन्ट्रल लॉ एजेन्सी, 1991) पृष्ठ संख्या 495